DAILY NEWS BULLETIN
LEADING HEALTH, POPULATION AND FAMILY WELFARE STORIES OF THE DAY
Tuesday 20190827

डायबिटीज

इन पांच चीजों का करेंगे सेवन, तो डायबिटीज के मरीजों को नहीं लेना पड़ेगा इंसुलिन का इंजेक्शन (Amar Ujala: 20190827)

भारत में हर चौथा इंसान डायबिटीज के किसी न किसी प्रकार से पीड़ित है। डायबिटीज के मरीज को समय के साथ दिल और गुर्दों की बीमारियां घेर लेती हैं। शरीर में इंसुलिन का स्तर गिरने लगता है तो शुगर के मरीजों को अलग से इंसुलिन का इंजेक्शन लेना पड़ता है। लेकिन अगर सही खानपान और जीवनशैली पर नियंत्रण रखा जाए तो डायबिटीज जैसी गंभीर रोग के होते हुए भी इंसान स्वस्थ जीवन जी सकता है। तो आइए जानते वो कौन से खाद्य पदार्थ हैं जिनका सेवन शुगर के मरीजों के लिए वरदान है।

हल्दी

वैसे तो हल्दी का सेवन भारतीय खानों में किया ही जाता है। लेकिन अगर किसी को टाइप टू डायबिटीज की बीमारी है तो उसे हल्दी का सेवन जरूर करना चाहिए। हल्दी में करक्यूमिन नामक सक्रिय घटक होता है जो डायबिटीज को रोकने में मदद करता है।

मेथी

आयुर्वेद के नियमों के अनुसार अगर किसी को मधुमेह की बीमारी है तो उसे रोज सुबह खाली पेट मेथी के पाउडर का सेवन गर्म पानी के साथ करना चाहिए। मेथी से शुगर को नियंत्रित करने में मदद मिलती है जिससे शरीर में इंसुलिन की मात्रा बढ़ जाती है।

करेला

बहुत सारे ऐसे खाद्य पदार्थ हैं जिनका नियमित रूप से सेवन शरीर में मधुमेह की बीमारी के असर को कम करता है। इसी में शामिल में करेला। जिसके कड़वे स्वाद में छुपा है सेहत का खजाना। डायबिटीज की तकलीफ होने पर सुबह करेले के जूस का सेवन असरकारक है।

बेरी

बेरी जैसे फलों का सेवन जो स्वाद में थोड़े खट्टे होते हैं, करने से भी शुगर नियंत्रित रहती है। खून में शुगर का स्तर सामान्य रखने और इन्सुलिन की मात्रा को सही रखने में यह मदद करता है।

मिस्सी रोटी

मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति को केवल गेंहू के आटे की रोटी नहीं खानी चाहिए। इस आटे में चने का आटा मिलाकर उसकी रोटी का सेवन करने से शुगर नियंत्रित होता है क्योंकि चने के आटे में ग्लिसेमिक इंडेक्स 70 होता है और गेंहू के आटे में सौ होता है।

गठिया

गठिया से बचना है तो पाचन रखें दुरुस्त, खानपान में बरतें सावधानी, इन चीजों से बनाएं दूरी (Amar Ujala: 20190827)

गठिया रोग की समस्या बहुत तेजी से बढ़ रही है। बुजुर्गों को होने वाली यह बीमारी अब युवाओं को भी तेजी से चपेट में ले रही है। आयुर्वेद के अनुसार, गठिया खराब वात दोष के कारण होता है। लोहिया अस्पताल के आयुर्वेद विभाग के चिकित्सक बताते हैं कि गठिया तीन प्रकार का होता है। रूमेटी गठिया, आस्टियो आर्थराइटिस और गाउट। रूमेटी गठिया को आयुर्वेद में आम वात कहा जाता है। खराब पाचन के कारण जमा हुए विषाक्त पदार्थ को अमा कहते हैं और वात एक प्रकार का दोष या जैविक ऊर्जा है। अमा पूरे शरीर में फैलकर कमजोर जोड़ों पर जमा होता है और फिर वात तेज हो जाता है। इससे सूजन पैदा होती है और आखिर में गठिया में परिवर्तित हो जाता है।

इसी तरह आस्टियो आर्थराइटिस को आयुर्वेद में संधिगत वात के सामान माना जाता है। यह तब होता है जब असंतुलित वात जोड़ों को अपना घर बना लेते हैं। मीनोपाज के प्रभाव के कारण यह महिलाओं में अधिक होता है। यह आमतौर पर घुटनों, एड़ियों, रीढ़ की हड्डियों और कूल्हों के जोड़ों को प्रभावित करता है। ऐसा आमतौर पर तब होता है, जब शरीर में कैल्शियम कम होने लगता है या उम्र के प्रभाव के कारण बुढ़ापा आने लगता है।

इसी तरह आस्टियो आर्थराइटिस को आयुर्वेद में संधिगत वात के सामान माना जाता है। यह तब होता है जब असंतुलित वात जोड़ों को अपना घर बना लेते हैं। मीनोपाज के प्रभाव के कारण यह महिलाओं में अधिक होता है। यह आमतौर पर घुटनों, एड़ियों, रीढ़ की हड्डियों और कूल्हों के जोड़ों को प्रभावित करता है। ऐसा आमतौर पर तब होता है, जब शरीर में कैल्शियम कम होने लगता है या उम्र के प्रभाव के कारण बुढ़ापा आने लगता है।

आयुर्वेद में गाउट को वात रक्त कहा जाता है। यह खराब वात और रक्त के कारण होता है। जब खराब वात और रक्त हाथों और पैरों की अंगुलियों में जमा होने लगते हैं तब गाउट की समस्या पैदा होती है। यह नमकीन, मसालेदार और खट्टे खाद्य पदार्थों के सेवन और शारीरिक गतिविधियों में कमी के कारण होता है। यह बहुत दर्दनाक स्थिति होती है।

मेथी, सोंठ, लहसुन गठिया में फायदेमंद

गठिया की दिक्कत से बचने के लिए पाचन दुरुस्त रखना बहुत जरूरी है। इसके लिए चाय, काफी, देर से भोजन करने और मसालेदार भोजन से बचें। इसके अलावा मेथी, लहसून और सोंठ सभी प्रकार के जोड़ों के दर्द में फायदेमंद है। सुबह-शाम एक-एक चम्मच मेथी खाने से फायदा मिलेगा। इसी तरह चार-पांच कली लहसुन एक गिलास दूध में उबाल लें। फिर लहसुन निकालकर खा लें और दूध पी लें। ऐसा 21 दिन या डॉक्टर की सलाह से लेकर देखें। इसी तरह सोंठ सुबह-शाम खाने के बाद एक-एक चम्मच खाने से जोड़ों के दर्द में आराम देता है। सबसे बेहतर है कि दिनचर्या को सही रखते हुए खान-पान का ध्यान दें।

अस्पतालों का विस्तार

अब मरीजों को नहीं करना होगा बेड के लिए इंतजार, 22 अस्पतालों में होने जा रहा बड़ा बदलाव (Dainik Jagran: 20190827)

https://www.jagran.com/delhi/new-delhi-city-22-hospitals-of-delhi-government-going-to-increase-11-thousand-bed-19522534.html

दिल्ली सरकार के सिर्फ लोकनायक अस्पताल में एमआरआइ मशीन है। अब 22 अस्पतालों में कुल 11 हजार 423 बेड बढ़ाए जाएंगे।

नई दिल्ली, जेएनएन। दिल्ली सरकार के 19 अस्पतालों के विस्तार की योजना है। इसके अलावा तीन अस्पताल बनाए जा रहे हैं। इस तरह आने वाले समय में 22 अस्पतालों में कुल 11 हजार 423 बेड बढ़ाए जाएंगे। इससे दिल्ली सरकार के अस्पतालों में दोगुने बेड उपलब्ध होंगे। हालांकि तीन साल में अस्पतालों में करीब 403 बेड बढ़ पाए हैं।

अस्पताल में बेड बढ़ाने का लक्ष्य

विधायक ओम प्रकाश शर्मा ने सवाल पूछा था कि सरकार ने अस्पतालों में कितने बेड बढ़ाने का लक्ष्य रखा था। अस्पतालों में कितने बेड हैं और वर्तमान सरकार के कार्यकाल में कितने बेड बढ़े हैं। इसके जवाब में स्वास्थ्य विभाग ने बताया कि दिल्ली सरकार के अस्पतालों में बेड क्षमता 10 हजार से बढ़ाकर 20 हजार किया जाएगा।वर्ष 2014-15 में अस्पतालों में 10 हजार 590 बेड स्वीकृत थे। वहीं वर्ष 2017-18 में 11 हजार 353 बेड स्वीकृत थे। दिल्ली सरकार के अस्पतालों में कुल 440 वेंटिलेटर हैं, इनमें से 396 कार्यरत हैं।

सिर्फ एक अस्पताल में है एमआरआइ

दिल्ली सरकार के सिर्फ लोकनायक अस्पताल में एमआरआइ मशीन है। उल्लेखनीय है कि दिल्ली सरकार ने निजी जांच लैबों में मरीजों को निशुल्क जांच उपलब्ध कराती है। वहीं सरकार ने बताया कि लोकनायक, जीटीबी सहित 19 अस्पतालों का विस्तार किया जाएगा।

नवंबर में बनकर तैयार होंगे दो अस्पताल

द्वारका, बुराड़ी व अंबेडकर नगर इन तीन जगहों पर नए अस्पताल का निर्माण हो रहा है। इनमें से दो अस्पताल नवंबर में बनकर तैयार होंगे। इनका कार्य क्रमश: 98 फीसद व 92 फीसद पूरा हो चुका है। द्वारका में 1241 बेड का अस्पताल अगले साल मार्च में बनकर तैयार होगा।

Govt added 394 beds to 38 hospitals in 3 yrs (Hindustan Times: 20190827)

http://paper.hindustantimes.com/epaper/viewer.aspx

NEWDELHI: The Delhi government has added 394 beds in 38 of its hospitals, including AYUSH hospitals, over the past three years, according to an answer submitted in the Delhi Assembly on Monday.

■ Of the hospitals being remodelled, Lok Nayak Hospital will get the highest share of beds —1,800.

In the response to the query by a member of the House, the government stated that there were 10,959 beds in the Delhi-government hospitals in 2014-15, which went up to 11,353 in 2017-18 as per the annual report of the directorate of health services.

“In budget 2018-19, it has been described that to ensure better healthcare facilities for our citizens, our government will increase the total bed strength in our hospitals from 10,000 to 20,000,” the answer said.

The deputy chief minister Manish Sisodia had allocated ₹450 crores for the ongoing construction of three new hospitals and remodelling of existing government hospitals.

The deadline for the three hospitals, which will add 2,609 beds to the existing ones have been pushed further. Earlier, the government had said that the hospitals were to come up by February and March 2019, now two of the hospitals will come up by November 2019 and one by March 2020, according to the reply.

The 600-bed hospital in Ambedkar Nagar is 98% complete, the 768 bed hospital in Burari is 92% done, and the 1,214 bed hospital in Dwarka sector 9 is 80% finished, according to the government.

The government also plans to add 8,814 beds by remodelling 19 of its existing hospitals. Earlier, only seven of its hospitals were to be remodelled.

Of the hospitals being remodelled, the highest number of beds – 1,800 -- would be added to the government’s biggest multi-speciality hospital Lok Nayak. The hospital sees more than

7,000 patients in its out-patient clinics every day. This will be followed by Deen Dayal Upadhyay hospital in Hari Nagar, where 900 beds would be added.

The government will also add 250 beds to the Rajiv Gandhi Superspeciality hospital in Tahirpur, according to the answer. Initially planned as a 650-bed multi- superspeciality hospital, the hospital has only about 200 beds so far.

In its election manifesto, the Aam Aadmi Party had promised to increase the bed strength in Delhi hospitals by 30,000.

The total bed strength in Delhi, including in hospitals run by the Centre, the civic bodies, and the private players, has gone up by around 9,000 between 2014 and 2017. Most of these beds are in private sector hospitals.

डिप्रेशन

महिलाओं को डिप्रेशन से निजात दिलाता है नियमित व्यायाम, मूड भी रखता है दुरुस्त (Dainik Jagran: 20190827)

https://www.jagran.com/world/america-exercise-may-boost-mood-for-women-with-depression-jagran-special-19522644.html

एक्सरसाइज यानी व्यायाम से शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है और कई प्रकार की बीमारियां भी दूर रहती हैं। यही नहीं यह हमारे मूड को ठीक रखता है।

वाशिंगटन, न्यूयॉर्क टाइम्स। यह तो सभी जानते हैं कि एक्सरसाइज यानी व्यायाम से शरीर हृष्ट-पुष्ट रहता है और कई प्रकार की बीमारियां भी दूर रहती हैं। अब एक नए अध्ययन में शोधकर्ताओं ने दावा किया है कि व्यायाम करने से गंभीर डिप्रेशन यानी अवसाद से जूझ रहीं महिलाओं को इससे निजात मिल सकती है। हालांकि व्यायाम से होने वाले फायदे इस बात पर निर्भर करते हैं कि हम कौन-सा व्यायाम कब और कैसे कर रहे हैं। क्या हम घर पर स्वत: एक्सरसाइज कर रहे हैं या किसी कोच के नेतृत्व में।

मूड भी रखता है दुरुस्त

हाल में हुए ध्ययन यह बताते हैं कि व्यायाम हमारे मूड को ठीक रखता है और कई अध्ययनों में यह दावा भी किया गया है कि शारीरिक रूप से सक्रिय लोग सुस्त रहने वाले या व्यायाम नहीं करने वाले लोगों की तुलना में ज्यादा खुश रहते हैं। कुछ परीक्षणों में इस बात का दावा भी किया गया है कि नियमित व्यायाम से चिंता और अवसाद को कम किया जा सकता है। यह अवसादरोधी दवाओं जितना ही प्रभावी हो सकता है। लेकिन वैज्ञानिक अभी तक यह नहीं बता पाए हैं कि शारीरिक व्यायाम लोगों के मानसिक स्वास्थ्य को कैसे ठीक कर सकता है।

व्यायाम से होता है रासायनिक पदार्थों का स्राव

वैज्ञानिकों के मुताबिक, वर्कआउट करने से हमारे पूरे शरीर में कई तरह के प्रोटीन और अन्य जैव रासायनिक पदाथोर्ं का स्नाव होता है। ये पदार्थ रक्त में प्रवेश कर हमारे मस्तिष्क तक पहुंच कर तंत्रिका संबंधी प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इससे हमारी भावनाएं भी प्रभावित होती हैं। लेकिन यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि व्यायाम के दौरान निकलने वाले पदार्थों में से कितने तत्व मानसिक स्वास्थ्य के लिए सबसे ज्यादा मायने रखते हैं। इसका पता लगाने के लिए आयोवा स्टेट यूनिवर्सिटी के असिस्टेंट प्रोफेसर जैकब मेयर ने एंडोकैनाबिनोइड्स और रनर्स हाई नामक पदार्थों के बारे पड़ताल शुरू की है।

क्या है एंडोकैनाबिनोइड्स

एंडोकैनाबिनोइड्स शरीर में स्वत: ही उत्पन्न होने वाले साइकोएक्टिव पदार्थ है। इसके यौगिक भांग में भी पाए जाते हैं। यह हमारे शरीर में ऊतकों का निर्माण करते हैं। एंडोकैनाबिनोइड्स हमारे मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र में विशेष रिसेप्टर्स को बांधते हैं। साथ ही हमारे मूड को शांत और बेहतर बनाने में मदद करते हैं।

मस्तिष्क को रखता है शांत

अध्ययन से पता चलता है कि व्यायाम अक्सर रक्तप्रवाह में एंडोकेनाबिनोइड (endocannabinoids) के स्तर को बढ़ाता है, जिसके कारण कुछ लोग को वर्कआउट के बाद खुद को शांत और हल्का महसूस करते हैं। नया अध्ययन हाल ही 'मेडिसिन एंड साइंस इन स्पोर्ट्स एंड एक्सरसाइज' में प्रकाशित हुआ है। जिसमें शोधकर्ताओं ने पाया कि नियमित व्यायाम से गंभीर डिप्रेशन से जूझ रहीं महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तन देखा गया।

सुप्त कोशिकाएं हो जाती है सक्रिय

एंडोकेनाबिनोइड के स्नाव ज्यादा होने से यह सीधा मस्तिष्क पर पहुंचकर तंत्रिका की कार्यप्रणाली को प्रभावित करता है। जिसके कारण सुप्त कोशिकाएं जाग्रत हो जाती हैं। अवसाद के दौरान भी मस्तिष्क की कुछ कोशिकाएं सुप्तावस्था में चली जाती हैं। शोधकर्ताओं ने कहा कि ऐसे में नियमित व्यायाम डिप्रेशन से जूझ रहीं महिलाओं के लिए किसी संजीवनी से कम नहीं हो सकता।

समय-समय पर जांच

गंभीर बीमारियों से रहना है कोसों दूर, तो इस एक हेल्थ टिप को जरूर करें फॉलो (Dainik Jagran: 20190827)

https://www.jagran.com/lifestyle/health-importance-of-regular-health-checkup-19522598.html

बढ़ती उम्र के साथ कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है इसलिए साल में 2 बार बॉडी की पूरी जांच कराएं जिससे अंदर पनप रही बीमारी के बारे में पता लगने पर उसका इलाज करा सकें।

जब हम युवावस्था की ओर बढ़ रहे होते हैं तो अक्सर हमें किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं होती है और हम अपने को बिल्कुल फिट महसूस करते हैं। धीरे-धीरे जैसे हमारी उम्र बढ़ने लगती है हमें कई प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अगर हम समय रहते अपने शरीर की जांच करवाते रहें तो हम कई प्रकार की गंभीर बीमारियों से बच सकते हैं। इसलिए बढ़ती उम्र में अपनी सेहत की अनदेखी न करें और समय-समय अपनी सेहत को दुरुस्त रखने के लिए जांचें करवाती रहें।

कितना जरूरी है समय-समय पर जांच

अगर समय रहते हमें अपनी शारीरिक समस्याओं का पता चल जाता है तो उनके गंभीर बीमारी बनने के प्रभाव से बचे रह सकते हैं। हेल्थ एक्सपर्ट्स का कहना है कि अगर समय रहते हमें अपनी शारीरिक व मानसिक समस्याओं को पता चल जाए तो हम उन्हें घातक होने से रोक सकते हैं। बढ़ती उम्र में साल में एक बार अपना चेकअप जरूर करवाएं। इस मामले में यह ध्यान रखें कि चाहे वह दांत संबंधी परेशानी हो या मन अशांत रहता हो.. इनकी भी अनदेखी न करें।

थकान और कमजोरी को न करें अनदेखा

जब भी आपको लगातार थकावट महसूस हो रही हो या अन्य कोई परेशानी नजर आ रही हो या आप अंदर ही अंदर उनका अनुभव कर रही हों तो बिना देर किए किसी कुशल चिकित्सक से परामर्श अवश्य करें। हममें से ज्यादातर लोग सोचते हैं कि अभी तो हल्की सी परेशानी दिख रही है। धीरे-धीरे अपने आप यह परेशानी कम हो जाएगी। ऐसी सोच सही नहीं है। अपने को फिट रखने के लिए जरूरी है कि हम समय-समय पर अपने ब्लड प्रेशर और ब्लड शुगर की जांच अवश्य करते रहें। जब भी आपको कोई परेशानी महसूस हो डॉक्टर से मिलकर उसकी वजह जानें, उससे संबंधित जांचें करवाएं और नेचुरल या दवाएं जैसे भी पॉसिबल हों ट्रीटमेंट कराएं। यह कहावत तो आपने सुनी ही होगी कि सेहत सही है तो सब कुछ दुरुस्त है।

Blood Pressure (Navbharat Times: 20190827)

http://epaper.navbharattimes.com/details/55737-66896-1.html

30 की उम्र में हाई ब्लड प्रेशर तो दिमाग पर असर

■ एनबीटी, नई दिल्ली : 30 की उम्र के बाद हमें अपने ब्लड प्रेशर पर ध्यान देना चाहिए। एक शोध में सामने आया है कि इस उम्र में हाई ब्लड प्रेशर आपके दिमाग पर असर डाल सकता है। इससे दिमाग की कार्य करने की क्षमता प्रभावित होती है। इस शोध के लिए शोधकर्ताओं ने 500 ऐसे लोगों की हेल्थ का आंकड़ा जुटाया जो मार्च 1953 में एक ही हफ्ते में पैदा हुए। इन सभी को उम्रभर ब्लड प्रेशर की परेशानी रही। 69-71 की उम्र के बीच इन सभी के दिमाग को स्कैन किया गया।

शोध में पाया गया कि जिन्हें 36 से 53 की उम्र के बीच हाई बीपी की परेशानी रही 71 की उम्र तक उनका दिमाग कुछ सिकुड़ा पाया गया। उनके दिमाग के वाइट मैटर (एक तरह की वाइरिंग जो दिमाग के अलग-अलग हिस्सों को जोड़ती है) में भी कुछ अंतर पाया गया।

फ्रूट ड्रिंक्स और शुगर स्वीटन्ड बेवरेजेस

2 साल से कम उम्र के बच्चों को न दें fruit juice: एक्सपर्ट्स (Navbharat Times: 20190827)

https://navbharattimes.indiatimes.com/lifestyle/health/experts-say-no-fruit-juices-for-children-below-2-years-new-guidelines-on-tea-coffee-for-children-below-5-years-age/articleshow/70851862.cms

एक्सपर्ट्स ने कहा है कि 2 से 5 साल के बच्चों को फ्रूट जूस या फ्रूट ड्रिंक्स और शुगर स्वीटन्ड बेवरेजेस से दूर रखना चाहिए। इस संबंध में नए दिशानिर्देश भी जारी किए गए हैं।

फ्रूट जूस पीना भला किसे पसंद नहीं। इससे न सिर्फ जरूरी पोषक तत्व शरीर को मिलते हैं बल्कि पानी की कमी भी दूर हो जाती है। लेकिन क्या आप जानते हैं कि शिशुओं और छोटे बच्चों को फ्रूट जूस बिल्कुल भी नहीं देना चाहिए, फिर चाहे वह फ्रेश हो या फिर पैक्ड जूस। खासकर 2 साल से 18 साल की उम्र के बीच के बच्चों को फ्रूट जूस या फ्रूट ड्रिंक्स पीने से रोकना चाहिए। इसके बजाय बच्चों को मौसमी फल खिलाने चाहिए ताकि उनकी सेहत दुरुस्त रहे। ऐसा एक्सपर्ट्स का कहना है।

आइडियन अकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स के न्यूट्रिशन चैप्टर द्वारा बनाए गए राष्ट्रीय सलाहकार समूह यानी नैशनल कंसल्टेटिव ग्रुप ने हाल ही में फास्ट ऐंड जंक फूड्स, शुगर स्वीटन्ड बेवरेजेस और एनर्जी ड्रिंक्स को लेकर ताजा दिशानिर्देश जारी किए हैं और उन्हीं में कहा गया है कि शिशुओं व छोटे बच्चों को फ्रूट जूस देने के बजाय मौसमी फल खिलाने चाहिए।

सभी कॉमेंट्स देखेंअपना कॉमेंट लिखें

इस समूह ने सलाह दी है कि अगर बच्चों को फ्रूट जूस या फिर फ्रूट ड्रिंक्स दिए भी जाते हैं तो उसकी मात्रा 2 से 5 साल की उम्र के बच्चों के लिए प्रति दिन 125ml यानी आधा कप होनी चाहिए, जबकि 5 साल से अधिक आयु वाले बच्चों को एक कप यानी प्रति दिन 250 ml के हिसाब से फ्रूट जूस देना चाहिए। राम मनोहर लोहिया अस्पताल में सीनियर पीडिऐट्रिशन डॉ. हेमा गुप्ता मित्तल, जोकि इस सलाहाकर समूह यानी कन्सलटेटिव ग्रुप का भी हिस्सा हैं, उन्होंने कहा, 'बच्चों को बताई गई मात्रा में दिया जाने वाला फ्रूट जूस एकदम फ्रेश होना चाहिए। चाहे फलों का जूस ताजा हो या फिर डिब्बाबंद, इनमें शुगर की मात्रा तो अधिक होती ही है, साथ ही कैलरी भी ज्यादा होती हैं। वहीं फल मांसपेशियों के विकास में मदद करते हैं और डेंटल हेल्थ के लिए भी जरूरी हैं।'

बच्चों को चाय-कॉफी कितनी मात्रा में?

वहीं ऐसे कैफीनयुक्त ड्रिंक्स पर जारी किए गए आईएपी के दिशानिर्देशों के अनुसार, 5 साल से कम उम्र के बच्चों को कार्बोनेटेड ड्रिंक्स जैसे कि चाय और कॉफी से बिल्कुल दूर रहना चाहि। स्कूल जाने वाले बच्चों और किशोरों की बात करें तो 5 से 9 साल के बच्चों के लिए चाय या कॉफी की मात्रा प्रति दिन आधा कप रहनी चाहिए, जबकि 10 से 18 साल के बच्चों के लिए प्रति दिन 1 कप चाय या कॉफी देनी चाहिए। बशर्ते उन्हें कैफीनयुक्त अन्य कोई चीज न दी जाए। आईएपी ग्रुप ने जंक फूड को JUNCS नाम की टर्म से रिप्लेस करने की भी सलाह दी है ताकि अनहेल्दी फूड्स से संबंधित अन्य चीजों और कॉन्सेप्ट्स को इसमें शामिल किया जा सके। एक्सपर्ट्स के मुताबिक, ऐसा इसलिए किया गया है ताकि अल्ट्रा-प्रोसेस्ड फूड्स, कैफीनयुक्त ड्रिंक्स और शुगर स्वीटन्ड बेवरेजेस को इसमें शामिल किया जा सके।

छोटे बच्चों को बिल्कुल भी न दें ये फूड

क्या हो सकती हैं दिक्कतें?

आईएपी की गाइडलाइन कहती है कि इन खाद्य पदार्थों और ड्रिंक्स का सीधा संबंध हाई बॉडी मास इंडेक्स से होता है और बच्चों में हार्ट संबंधी समस्याएं हो सकती हैं। इसके अलावा कैफीनयुक्त ड्रिंक्स पीने से नींद आने में दिक्कत होने लगती है। भारतीय बच्चों में फास्ट फूड और शुगर स्वीटन्ड बेवरेजेस की खपत में वृद्धि को देखते हुए ये दिशानिर्देश काफी महत्वपूर्ण है। भारतीय बच्चों में ऐसी चीजों की खपत ज्यादा इसलिए है क्योंकि ये आसानी से मिल जाती है, अगर पैरंट्स वर्किंग हैं तो भी उस स्थिति में प्रोसेस्ड फूड्स और ड्रिंक्स एक तरह से वरदान का काम करते हैं। इसके अलावा इन्हें आकर्षक पैकेजिंग में परोसा जाता है, जिसकी वजह से बच्चे इनकी ओर अधिक आकर्षित होते हैं।

13 अगस्त को सेंटर फॉर साइंस ऐंड इन्वाइरनमेंट यानी सीएसई द्वारा किए गए एक सर्वे के मुताबिक, 9 से 14 साल के 200 बच्चों में से 93 फीसदी ऐसे बच्चे थे जो हफ्ते में एक बार से अधिक पैकेज्ड या प्रोसेस्ड फूड आइटम्स खाते हैं वहीं 68 फीसदी बच्चे ऐसे थे जो इसी टाइम पीरियड में पैकेज्ड शुगर स्वीटन्ड बेवेरेजस का सेवन करते हैं। वहीं 53 फीसदी ऐसे बच्चों का भी आंकड़ा था जो कम से कम दिन में एक बार ये चीजें खाते हैं।

ज्यादा फ्रूट जूस पीने से समय से पहले मौत का खतरा: स्टडी

एक्सपर्ट्स का मानना है कि इसकी वजह से बच्चों में हाई ब्लड प्रेशर, हार्ट संबंधी परेशानियां, डेंटल हेल्थ इशूज और बिहेवियरल चेंजेस अत्यधिक होने लगे हैं।

आईएपी ने भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण यानी FSSAI के एक सुझाव की वकालत करते हुए सुझाव दिया है कि सभी पैक खाद्य पदार्थों की ट्रैफिक लाइट कोडिंग की जाए ताकि जंक फूड्स के खतरे से लड़ा जा सके। इसके अलावा ऐसे उत्पादों के विज्ञापन और विपणन के लिए अलग-अलग दिशानिर्देश विकसित किए जाएं।

भारतीय खाद्य सुरक्षा और मानक प्राधिकरण के सीईओ पवन अग्रवाल ने कहा कि इस संबंध में उन्होंने एक प्रपोजल पर प्रोसेस्ड फूड इंडस्ट्री से बात की है। उन्होंने उन उत्पादों के पैकेटों के सामने लाल रंग की कोडिंग प्रदर्शित करने का प्रस्ताव रखा है जिनमें फैट, शुगर या सॉल्ट यानी नमक की अत्यधिक मात्रा है। बकौल पवन अग्रवाल, 'इस इंडस्ट्री के कुछ रिजर्वेशन्स हैं और हम इस बात पर एक आम सहमति बनाने की कोशिश कर रहे हैं कि इन्हें कैसे लागू किया जाए।

किडनी में इंफेक्शन

बुखार के साथ कमर दर्द? हो सकता है किडनी में इंफेक्शन (Navbharat Times: 20190827)

https://navbharattimes.indiatimes.com/lifestyle/health/fever-accompanied-by-back-pain-can-be-a-symptom-of-kidney-infection/articleshow/70852086.cms

अगर कमर के बाएं हिस्से में दर्द हो और साथ में बुखार हो तो फिर यह गुर्दे यानी किडनी में इंफेक्शन का एक संकेत हो सकता है। क्या है इसके कारण, इलाज और लक्षण, बता रहे हैं इम्यूनोलॉजिस्ट एवं यूमैटॉलजिस्ट डॉ. स्कन्द शुक्ल:

मधु को जब तेज बुखार के साथ कमर के बाएं हिस्से में दर्द उठा, तो उन्होंने डॉक्टर को दिखाना उचित समझा। पर्याप्त जांचों के बाद उन्होंने बताया कि मधु को पायलोनेफ्राइटिस इंफेक्शन हो गया है।

पायलोनेफ्राइटिस दो शब्दों से मिलकर बना है। पायलो यानी पस (मवाद) और नेफ्राइटिस यानी गुर्दे का संक्रमण यानी यह गुर्दे के संक्रमण के लिए इस्तेमाल होने वाला शब्द है। कई बैक्टीरिया इस स्थिति को पैदा कर सकते हैं। मूत्राशय जोकि नीचे होता है, उसकी तुलना में गुर्दों में संक्रमण की आशंका कम होती है।

ध्यान यह भी देना है कि कई बार पायलोनेफ्राइटिस के लक्षण ऐसे होते हैं, जिनसे इन अंगों के विशेषज्ञ के पास जाने की आवश्यकता रोगी को नहीं जान पड़ती। बुखार, कमर में दर्द और उल्टियां- ऐसे लक्षणों में कहां आम व्यक्ति को किडनी का ध्यान आता है।

पायलोनेफ्राइटिस के लक्षण और कारण

हमारी आंतों में तरह-तरह के जीवाणु रहते हैं। मलत्याग के दौरान ये बाहर आते हैं और गुदा व यौनांग के आसपास की त्वचा पर बस जाते हैं। फिर मौका पाकर ये मूत्रमार्ग से वापस भीतर ऊपर जाने की फिराक में रहते हैं। ऐसा करने से नीचे मूत्राशय व कभी-कभी ऊपर गुर्दों के संक्रमण की आशंका पैदा हो जाती है। मूत्राशय का संक्रमण कहलाता है सिस्टाइटिस और गुर्दों का पायलोनेफ्राइटिस।

ये 6 चीजें खाएं, किडनी में पथरी से छुटकारा पाएं

पायलोनेफ्राइटिस में पेशाब में जलन हो सकती है, लेकिन ऊपर बताये लक्षण इसमें अधिक देखने को मिलते हैं। ऐसे में कई बार यह डायग्नोसिस सोची नहीं जाती है। पेशाब की जांच में जब संक्रमण की पुष्टि होती है, तो उसके बाद अल्ट्रासोनोग्राफी कराई जाती है, जिसमें पायलोनेफ्राइटिस पहचानी जाती है। डायबीटीज या गुर्दा-पथरी के रोगियों में यह रोग अधिक देखने को मिलता है। अधिक या एकाधिक यौन-सम्बन्धों के कारण भी यह हो जाता है। कई बार रोगियों का पेशाब मूत्राशय से नीचे उतरने की बजाय ऊपर की ओर लौट पड़ता है, जिसे यूरेटेरिक रिफ्लेक्स कहते हैं। इस कारण भी पायलोनेफ्राइटिस की आशंका बढ़ जाती है।

हार्ट डिजीज से लेकर किडनी स्टोन तक से बचाता है गन्ने का जूस

गर्मी अपने पूरे उफान पर है। लेकिन इस चिलचिलाती धूप और सड़ी गर्मी का डर तब मन से निकल जाता है जब दिमाग में मौसमी छाछ, आम और गन्ने का नाम आता है। जगह-जगह अब लोगों ने गन्ने का रस तक बेचना शुरू कर दिया है। छाछ और आम तो आपने खाने शुरू कर ही दिए होंगे, लेकिन अब गन्ने का जूस पीना भी शुरू कर दीजिए। गन्ने का जूस न सिर्फ लू यानी हीट स्ट्रोक से बचाता है बल्कि कई गंभीर बीमारियों को भी दूर रखता है। आइए आज आपका गन्ने के जूस के फायदों के बारे में बताते हैं: (फोटो साभार: gettyimages.in)

यूटीआई इंफेक्शन और किडनी स्टोन में मददगार

गन्ने का जूस यूटीआई इंफेक्शन को दूर करने में मदद करता है और किडनी स्टोन से भी निजात दिलाता है। साथ ही यह किडनी को सही तरह से फंक्शन करने में मदद करता है। (फोटो साभार: gettyimages.in)

वजन मेनटेन करता है

आयुर्वेद के अनुसार, गन्ने के जूस में ग्लाइसीमिक इंडेक्स बेहद कम होता है और इसकी वजह से ये बॉडी मेटाबॉलिज्म तो हेल्दी बनाए ही रखता है साथ ही वजन को भी मेनटेन करने में मदद करता है। (फोटो साभार: gettyimages.in)

कैंसर से बचाव

आयुर्वेद के अनुसार, गन्ने में फॉसफॉरस, आयरन, मैग्निशियम, कैल्शियम और पोटैशियम की अत्यधिक मात्रा होने की वजह से यह अल्कलाइन होता है। यही प्रॉपर्टी को कैंसर को दूर रखने में मदद करती है। दरअसल इस अल्कलाइन नेचर में कैंसर सेल्स सर्वाइव नहीं कर पाते। स्टडीज के अनुसार, गन्ने का रस प्रोस्टेट और ब्रेस्ट कैंसर में काफी कारगर रहा है।

लू लगने से बचाता है

जिन लोगों को टॉइलट जाते वक्त जलन होती है, उनके लिए गन्ना रामबाण है। साथ ही यह हीट स्ट्रोक से भी बचाता है।

हार्ट संबंधी बीमारियों में लाभदायक

गन्ने का जूस हार्ट संबंधी बीमारियों को भी दूर करने में मदद करता है और बेड कलेस्ट्रॉल भी कम करता है।

कील-मुंहासे करे दूर

स्किन पर अगर कील-मुंहासे हैं या दाग-धब्बे हैं तो उसमें भी गन्ने का जूस फायदा करता है। इसके लिए आप रोजाना गन्ने के जूस को स्क्रब के तौर पर चेहरे पर लगाएं।

पायलोनेफ्राइटिस को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता नहीं तो गुर्दों का यह संक्रमण पूरे शरीर में फैल सकता है। उपचार में ऐंटीबायॉटिक दवाओं की भूमिका मुख्य है और इनका चुनाव ध्यानपूर्वक करना पड़ता है। साथ ही यह भी देखना होता है कि किस कारण से पायलोनेफ्राइटिस पनपी है। ऐसा करने से ही इसे आगे होने से रोका जा सकता है। मधु को भी डॉक्टर ये बातें समझा रहे हैं।

स्पाइन की बीमारी

यदि आपका बच्चा झुककर चल रहा है तो उसे शरारत न समझें, हो सकती है स्पाइन की बीमारी (Dainik Bhaskar: 20190827)

https://www.bhaskar.com/delhi/delhi-ncr/news/if-your-child-is-walking-down-then-do-not-consider-him-mischievous-may-cause-spine-disease-093005-5331586.html

यदि आपका बच्चा झुककर चल रहा है तो उसे उसकी शरारत न समझें, हो सकता है उसे स्पाइन की गंभीर बीमारी स्कोलियोसिस हो। यह बीमारी 14 साल तक के बच्चों में ज्यादा होने की संभावना रहती है। लड़कों के मुकाबले लड़कियों में इसके 7-8 गुना ज्यादा होने की आशंका रहती है। परिजन बच्चों की शरारत मनाते रहते हैं और वह बीमार होता जाता है, जिसके बारे में बहुत वक्त बाद पता चलता है और तब सर्जरी ही एकमात्र रास्ता होता है। अगर शुरुआत में ही इसका पता चल जाए तो यह इलाज से ही ठीक हो सकता है। छोटे बच्चों में इस गंभीर बीमारी की पहचान करने के लिए इंडियन स्पाइनल इंजरी सेंटर (एएसएसआई) इस क्षेत्र में काम करने वाली संस्था एसोसिएशन ऑफ स्पाइनल सर्जन ऑफ इंडिया के साथ मिलकर तमाम बच्चों की जांच करेगा। साथ ही बीमारी के लक्ष्ण पाए जाने पर उसे इलाज के लिए कहेंगे। स्क्रीनिंग के लिए ये केंद्र सरकार के स्वास्थ्य विभाग और शिक्षा विभाग को लिख चुके हैं। इंडियन स्पाइन इंजरी सेंटर और एसोसिएशन ऑफ स्पाइनल सर्जन ऑफ इंडिया का लक्ष्य देश के 14 शहरों के बच्चों की जांच करना है। शुरुआत 9 शहरों से होगी, जिसमें दिल्ली भी शामिल है। दो साल में डेढ़ लाख बच्चों की जांच की जाएगी। एएसएसआई के चीफ डॉ. एचएस छाबड़ा ने कहा कि बच्चे के झुककर चलने की वजह उसकी रीढ़ की हड्डी में परेशानी भी हो सकती है। हो सकता है उसकी रीढ़ मुड़ गई हो, जिसके बचपन में होने के ज्यादा चांस रहते हैं। इसे स्कोलियोसिस कहा जाता है। इस तरह की बीमारी के कॉस्मेटिक और न्यूरोलॉजिकल फंक्शन पर विनाशकारी परिणाम हो सकते हैं।

कंधा ऊंचा-नीचा, हाथ लंबे-छोटे हों तो न करें नजरअंदाज

इन शहरों में ऐसे होगी जांच

शुरुआत में दिल्ली, मुंबई, चेन्नई, कोयम्बटूर, बेंग्लूरू, भुवनेश्वर, इंदौर, लखनऊ और पटना में बच्चों की जांच की जाएगी। एसोसिएशन ऑफ स्पाइनल सर्जन ऑफ इंडिया के डॉ शंकर आचार्य ने कहा कि अभियान के तहत बच्चों और उनके माता-पिता को इस बारे में जागरूक किया जाएगा। रीढ़ की हड्डी

की जांच उन बच्चों की होगी जो इसके लिए तैयार होंगे। स्पाइन सर्जन के बताने के बाद रीढ़ की हड्डी की जांच मान्यता प्राप्त चिकित्सा अधिकारियों या नर्सों द्वारा किया जाएगा। ऐसे ई लर्निंग प्रोग्राम भी तैयार करेंगे जिससे लोग खुद भी बच्चों की जांच कर सकें।

Climate change

'China may meet CO2 emissions goal early' (Hindustan Times: 20190827)

http://paper.hindustantimes.com/epaper/viewer.aspx

BEIJING: China is on track to meet its emission goals up to a decade early, according to a study that focused on 50 Chinese cities between 2000 and 2016. The study collated CO2 emission data and per capita GDP figures.

The study was conducted by researchers from Nanjing University, Tsinghua University, Harvard University and Chinese Academy of Sciences.

A Harvard University article on the study said, "Using data on future population size and level of economic development from World Bank, the researchers say China's total emissions could peak between 2021 and 2025 at 13-16 gigatonnes of CO2, well ahead of the 2030 commitment made by China under the UN Paris Climate Agreement."

HIV/AIDS

India pivotal to global fightback against AIDS, says chief of vaccine initiative (The Indian Express: 20190827)

https://indianexpress.com/article/lifestyle/health/india-pivotal-to-global-fightback-against-aids-says-chief-of-vaccine-initiative-5939751/

A nonprofit scientific research organisation seeking to address urgent, unmet global health challenges — including HIV and tuberculosis — IAVI has several technology and innovation partnerships with the Department of Biotechnology.

There are two trials currently under way for a possible AIDS vaccine but neither has yet reached a stage when a date can be put to the availability of the vaccine, Feinberg said.

With 2 million new HIV infections reported every year across the world and Indian companies supplying 66 per cent of antiretroviral drugs, the country is key to the global fightback against AIDS, Dr Mark Feinberg, president and CEO of the International AIDS Vaccine Initiative (IAVI), said on Monday.

Feinberg, currently on a visit to India, did not hazard a deadline for an AIDS vaccine but said work on it has improved understanding of the immune system and spawned many technologies that can help fight other diseases, including emerging threats such as Ebola and Zika.

A nonprofit scientific research organisation seeking to address urgent, unmet global health challenges — including HIV and tuberculosis — IAVI has several technology and innovation partnerships with the Department of Biotechnology.

“Making low-cost, high-quality antiretroviral drugs available is key to the global AIDS fightback. That is why Indian pharmaceutical companies, with their ability to manufacture high-quality, affordable medicines are key,” Feinberg told The Indian Express.

With neither a vaccine nor any cure in sight, antiretroviral therapy (ART) is the only option available for people living with HIV-AIDS. According to the World Health Organization, standard ART consists of a combination of at least three antiretroviral drugs to suppress the HIV virus and stop the progression of the disease.

Why India is crucial in battle against the virus

There are 2 million new AIDS infections every year, and about 66 per cent of the world population currently on antiretroviral therapy consumes drugs manufactured in India. Globally, the ART market is valued at .48 billion (in 2018) and is expected to reach .83 billion by 2025. Indian pharmaceutical companies, with their ability to manufacture high-

quality, affordable medicines are very important in this global battle, according to the chief of International AIDS Vaccine Initiative.

Significant reductions have been seen in rates of death and suffering by the use of a potent ART regimen, particularly in the early stages of the disease.

There are two trials currently under way for a possible AIDS vaccine but neither has yet reached a stage when a date can be put to the availability of the vaccine, Feinberg said.

However, among technologies that have developed as a byproduct of the quest for the vaccine, IAVI, Feinberg said, is excited about monoclonal antibodies — antibodies raised artificially to target one specific type of pathogen — and can be the key to countering emerging infections.

"Monoclonal antibodies are critically important and could be the future of tackling diseases such as cancer, or even something like snakebite," Feinberg said.

Cardiology

Cardiovascular disease burden in India, and state highs & lows (The Indian Express: 20190827)

https://indianexpress.com/article/explained/cardiovascular-disease-burden-in-india-and-state-highs-lows-5939331/

Three-quarters of CVD-related deaths happen in lower-middle income countries, according to the World Health Organization, which classifies India among such countries.

Cardiovascular disease India, India healthcare, heart related problems, heart attack acses in india, The Lancet PolyPill tablets report, cardiovascular disease, polypill, heart problems, heart polypill

The 2018 study found that among Indian states, West Bengal, Odisha and Tripura have the highest burden of strokes in terms of crude DALY rates.

Last week, The Lancet published the results of a clinical trial with PolyPill tablets (a combination of aspirin and atorvastatin) conducted on older patients of cardiovascular disease

(CVD) in Iranian adults. It concluded that a fixed dose of the tablets along with therapy may help reduce the CVD burden, particularly in low and middle income countries.

STROKE IN INDIAN STATES (DALY LOST PER LAKH POPULATION)

HIGHEST BURDEN

West Bengal	2,821
Odisha	2,259
Tripura	2,259
Assam	2,229
Chhattisgarh	2,142

LOWEST BURDEN

Mizoram	455
Sikkim	488
Delhi	561
Himachal Pradesh	656
Arunachal Pradesh	739

ISCHAEMIC HEART DISEASE (DALY LOST PER LAKH POPULATION)

HIGHEST BURDEN

Punjab	5,758
Tamil Nadu	4,788
Haryana	4,244
Andhra Pradesh	4,023
Karnataka	3,892

LOWEST BURDEN

Mizoram	663
Arunachal Pradesh	957
Meghalaya	957
Nagaland	1,167
Sikkim	1,526

Three-quarters of CVD-related deaths happen in lower-middle income countries, according to the World Health Organization, which classifies India among such countries.

Among CVDs, heart attacks and strokes are the most common cause of death and disability in Iran. In India, too, the leading CVD diseases are ischaemic heart disease and stroke, contributing 61.4 per cent and 24.9 per cent of total DALYs (Daily Adjusted Life Years) lost from CVDs, according to an earlier Lancet study (2018).

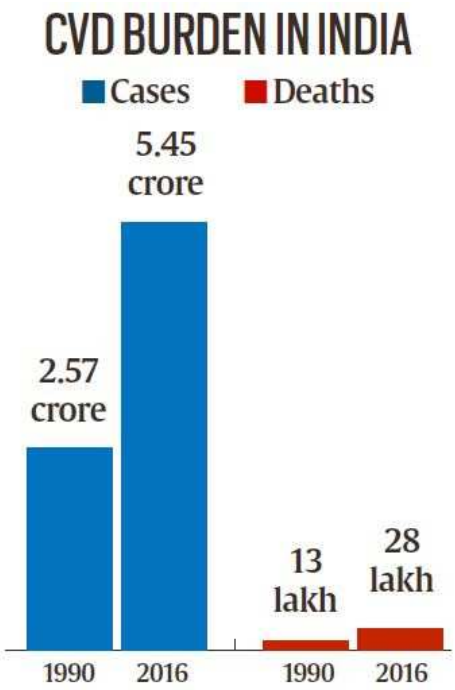

The 2018 study found that among Indian states, West Bengal, Odisha and Tripura have the highest burden of strokes in terms of crude DALY rates. Crude rates are calculated by factoring in incidence along with the population of a region. Mizoram, Sikkim and Delhi have the lowest burden of stroke in terms of DALYs per 1,00,000. In the case of ischaemic heart disease, Punjab, Tamil Nadu and Haryana have the highest burden while Mizoram, Arunachal Pradesh and Meghalaya have the lowest.

Poverty (The Asian Age: 20190827)

http://onlineepaper.asianage.com/articledetailpage.aspx?id=13653124

Providing shelter is a powerful weapon for banishing poverty

Moin Qazi

meanwhile

One of the most challenging problems of our times is homelessness. While we continue to record improvements in dealing with poverty, homelessness has been plagued with an unimaginative response from policy pundits. The apathetic approach of successive governments is symptomatic of the disease that ails India's housing system.

Everyday, more and more families find themselves in a struggle to keep a decent roof over their heads. There are millions of low-income families who live in overcrowded, inadequate and unsafe spatchcock dwellings made with cheap and fragile material like rotting wood and plastic coverings, crammed between dusty paths and open sewers with virtually no sanitation, environmental risk factors and lack of even the barest infrastructure. These are usually socially homogenous encampments where the unskilled poor live among themselves, disconnected from others, making it harder for them to access the mainstream economy.

The number of people facing housing insecurity is climbing more steeply as they struggle to make a choice between food on the table and a roof above their heads. A decent habitat and sheltered environment for low-income families can improve their well-being and catalyse overall economic growth. There is little more critical to a family's quality of life than a healthy and safe living space. Living in substandard housing leads to a vicious cycle of debilitating problems. It is thus critical to recognise housing investment as a fundamental building block of economic activity.

There was a time when landlessness, which inevitably accompanies poverty and its attendant ills, affected a smaller chunk of the population. However, the number of landless people has been rising. The ones without land join the ranks of the worst ones in extreme poverty and the task of poverty alleviation became even more difficult. Considering the links between landlessness and poverty or the need to score better successes against poverty, it is important to put a hard brake on the process of becoming landless.

Landlessness and the lack of secure property rights among the poor are among those inequities that perpetuate poverty, hold back economic development and fan social tensions. Demographic shifts, combined with poor or non-existent land ownership policies and insufficient resources have resulted in a surge of slum creation and further deteriorated living conditions.

People actually do not demand houses — they demand habitats. A house is an object — a habitat is a node in an ecosystem of overlapping networks — physical (roads, water, power and sanitation), economic (labour markets, urban transport, distribution and retail, entertainment) and social (education, health, security, family and friends). The ability to connect to all of these networks makes a habitat valuable.

House prices have been stretching further and further away from normal wages, making it difficult for low-income families to get on the housing ladder. Faced with the enormity of the housing need and financial weakness of those in need, the government builds low-income housing units and distributes them at very high levels of subsidy. With no clear definition and a lot of fudging, anything is possible. So, we get a plethora of "low-cost" home schemes with ambiguous rules for entitlement. Due to the high proportion of subsidy, only a few such units are built. The housing units are usually attractive to members of the middle class, who often manoeuvre the eligibility rules and succeed in displacing the intended beneficiaries.

The poor and low-income people are shunned by mainstream financial institutions because they lack the requisite documents to attest their income. They are seen by these institutions as both expensive to serve and risky as they have no capacity to make regular monthly payments over a long period of time. Further, they do not have the formal proof of land ownership. Finally, poor people find the procedures onerous.

A man sleeps at a night shelter for poor and homeless people — AFP

The key constraint in providing shelter is that people do not have proof of being owners of the piece of land on which they live. This keeps them deprived of so many basic amenities. Once titled, they could obtain access to several government benefits. Even a small plot can lift a family out of extreme poverty.

In poor urban areas, many people who live in slums have little to no control or ownership over the property they live on. Many informal settlements in cities are illegal and unfinanced, leaving poor people on poor property with no chance of improving their state. These households cannot provide mortgage-able collateral for a loan and cannot provide third-party documentation of their earnings. The formal financial sector is unable to serve them. Excluded from formal financing, many households delay or are unable to make investments into housing.

India's housing space — particularly for the lower tier in the economic pyramid — has remained largely unaddressed as many tried and found it a hard ground. Lack of proper documentary rights is a major obstacle as many families may not have had documentation for generations and the process of obtaining and putting it in place is an impossible mission to accomplish without a nimble titling, mortgaging and financing system.

When people have secure land, they invest in improvement projects, work more hours without fear of land theft, and are more likely to take loans using their new property as security.

There is little more critical to a family's quality of life than a healthy, safe living space. A decent habitat and shelter environment for the poorer sections of society can not only contribute towards their well-being and real asset creation but also catalyse overall economic growth.

Land ownership is often the bedrock of other development interventions: owning land boosts nutrition, educational outcomes and gender equality. The converse is equally true.

Where land security is absent or weak — that is, when men and women do not receive recognised legal rights to their land and can thus be easily displaced without recourse — development efforts flounder, undermining conservation efforts, seeding injustice and conflict, and frustrating efforts to escape poverty.

Priority for housing is higher than education and health. Sustainable and inclusive housing solutions, indeed, could bolster large economic growth quickly and efficiently.

Hernando De Soto's 2000 book *The Mystery of Capital* makes a very starting revelation, "The hour of capitalism's greatest triumph," declares the famed Peruvian economist, "is in the eyes of four-fifths of humanity, its hour of crisis."

Mr De Soto explains that for many people in the developing world, the land on which they live is their only asset. If that property is not publicly recognised as belonging to them, they lose out — missing out on some of their highly deserved social benefits.

India's rural housing space — particularly for the lower tier in the economic pyramid — has remained largely unaddressed as many had tried and most found it a hard ground. The most elusive issue in housing finance is that of legal title.

While many villagers own their homes, which they likely built themselves, they rarely own the piece of land which holds their dwelling. This is a major obstacle as many families may not have had documentation for generations and the process of obtaining and putting it in place is an impossible mission to accomplish without a nimble titling, mortgaging and financing system.

In recent years, social entrepreneurs have been doing extensive work in India on ways to equip the poor with better and more secure rights to ownership of land. If the government's housing programmes work in tandem with them, the synergy can accelerate the journey towards addressing what is certainly the most critical problem for the world — homelessness. Providing shelter is the most powerful weapon for banishing poverty.

We need a mass programme of social house building if we have to relieve the congestion of the homeless. Or still better, we should work on modest step-by-step upgrades to slums in partnership with residents replacing precarious cardboard or tin shanties with larger and higher-quality constructions.

The government must implement an out-of-the-box approach to break down the thickets of red-tapism. What is actually needed is revolutionary and cutting-edge reforms that rip through the dense jungle of paperwork and documentation. Given the scale, the need for adequate and affordable housing presents significant business opportunities for the private sector, especially for developers, investors and financial institutions.

The stresses on account of homelessness are rising and we face a mountain of challenges. Solutions will come from pairing passion with entrepreneurship and digging deep into the challenge at hand. Those tasked with devising and producing housing policies need to work within stringent timelines with transparency and accountability.

The writer is an author, columnist and member of the National Committee on Financial Inclusion for Women at the Niti Aayog

Pain

Blocking key protein could treat chronic pain (Medical News Today: 20190827)

https://www.medicalnewstoday.com/articles/326152.php

New research in mice suggests that targeting a particular protein in the spinal cord could form the basis of a new pain relief medication that could relieve chronic pain for thousands of people.

Approximately 20% of adults in the U.S. are currently living with chronic pain.

About one-fifth of adults in the United States are living with chronic pain, which is a pain that lasts for longer than 3 months. However, one specific type of chronic pain is of particular concern — neuropathic pain.

Neuropathic pain results from nerve injury and around 10% of the U.S. population may be living with it. Due to rising life expectancy and contributory lifestyle factors, estimates suggest that this figure will increase.

Neuropathic pain has a range of causes, including physical injury to the nerves that send information between the spinal cord and brain, viral infections, conditions such as diabetes and multiple sclerosis, medication side effects, and excessive alcohol consumption.

The cause does not alter the fact that doctors find this type of pain challenging to treat. It can also significantly impact a person's life, with symptoms ranging from burning and tingling to stabbing and stinging.

Traditional pain relief medications are often ineffective against neuropathic pain. As assistant professor Mette Richner from Aarhus University, Denmark, puts it, people with neuropathic pain can try a shopping basket of medications "without ever really getting any good results."

But Richner and a team from the university have identified a protein that could be an effective target for pain relieving drugs. A decade's worth of research spurred the new study, published in the journal Science Advances.

How pain develops

Previous studies revealed that mice unable to produce sortilin, which is a protein that occurs on the surface of nerve cells, seemed to feel no pain after suffering nerve damage.

The researchers saw the same effect in regular mice with nerve damage, but only when they blocked sortilin's path.

The team wanted to find out why. They already knew that chronic pain occurred as a result of malfunctioning nerve cells. So they used molecular techniques, including tissue and protein analyses, to discover the link between sortilin and pain.

Chronic pain relief: Mindfulness may be just as good as CBT

Mindfulness may be a valid alternative to cognitive behavioral therapy.

"And it's here, at the molecular level, that we've now added a crucial piece to a larger puzzle," explains Richner. That piece, in summary, is the role of sortilin in the pain development process.

"Once nerve damage has occurred, and the nerve cells go into overdrive, molecules are released, which start a domino effect that ultimately triggers pain," she continues.

"The domino effect can be inhibited by a particular molecule in the spinal cord called neurotensin, and our studies show that the neurotensin is 'captured' by sortilin so that the brake is itself inhibited."

From mice to humans

A drug that could stop sortilin in its tracks could go some way to diminishing or stopping neuropathic pain altogether in the human body.

The team note two limitations to the research. One is that any further research into blocking sortilin will require the help of the pharmaceutical industry. Secondly, the research took place in mice, and the researchers cannot yet say whether they can apply the findings to humans.

However, associate professor Christian B. Vaegter is confident that blocking sortilin could have the same effect on humans.

"Our research is carried out in mice, but as some of the fundamental mechanisms are quite similar in humans and mice, it still gives an indication of what is happening in people [living with] chronic pain."

Christian B. Vaegter

Finding a treatment, however, depends on finding a way to halt sortilin in the spinal cord locally, and that will require a lot more research. For now, remedying neuropathic pain remains a challenge.

Ageing

Designing a blood test that can predict lifespan (Medical News Today: 20190827)

https://www.medicalnewstoday.com/articles/326137.php

The ability to predict how long someone is likely to live would help doctors tailor treatment plans. A new study looking at biomarkers in the blood concludes that more accurately estimating mortality might soon be possible.

Researchers analyze blood in the search for markers of mortality risk.

As it stands, doctors can predict mortality within the final year of life with some degree of accuracy.

However, predicting it over longer periods — such as 5–10 years — is not yet possible.

A group of scientists who recently published a paper in the journal Nature Communications hope that they are now on the path toward developing a reliable predictive tool.

They believe that a blood test might one day be able to predict whether someone is likely to live 5 or 10 more years. The authors explain that this would help doctors make important treatment decisions.

For instance, they would be able to ascertain if an older adult is healthy enough to have surgery, or help identify those in most need of medical intervention.

A test like this might also benefit clinical trials: Scientists could monitor how an intervention impacts mortality risk without having to run trials until enough people die.

Predicting longevity

Currently, blood pressure and cholesterol levels can give doctors an impression of a person's likely lifespan. However, in older adults, these measures become less useful.

Counterintuitively, for people aged 85 or over, higher blood pressure and higher cholesterol levels are linked with lower mortality risk.

Scientists from Brunel University London in the United Kingdom and Leiden University Medical Center in the Netherlands set out to identify any biomarkers in the blood that might help tackle this issue.

How your personality could affect your longevity

A recent study has concluded that personality traits in adolescence might predict longevity.

Their study is the largest of its kind, taking data from 44,168 people ages 18–109. During the study's follow-up period, 5,512 of these people died.

The team initially identified metabolic markers associated with mortality. From this information, they created a scoring system to predict when a person might die.

Next, the researchers compared the reliability of the scoring system with that of a model based on standard risk factors. To do this, they studied data from a further 7,603 individuals, 1,213 of whom died during follow-up.

Mortality metabolites

After whittling down a long list of metabolites, the researchers settled on 14 biomarkers independently associated with mortality.

Having higher concentrations of some of the 14 biomarkers — including histidine, leucine, and valine — is associated with decreased mortality.

Conversely, having lower concentrations of others — such as glucose, lactate, and phenylalanine — is associated with increased mortality.

The scientists demonstrated that the combination of biomarkers could predict mortality equally well in both males and females. They also tested their findings across several age groups, concluding that "[a]ll 14 biomarkers [...] showed consistent associations with mortality across all strata."

The biomarkers they identified are involved in a wide range of processes in the body, including fluid balance and inflammation. Also, scientists have already linked most of them to mortality risk in previous studies.

However, this was the first time that researchers have demonstrated their predictive power when combined into one model.

This study is just the next step along a path that might lead to a usable blood test. However, the study authors feel encouraged:

"A score based on these 14 biomarkers and sex leads to improved risk prediction as compared [with] a score based on conventional risk factors."

A long path ahead

The authors do note certain limitations of their study. For example, they were only able to analyze hundreds of the thousands of metabolites present in human serum.

Including more metabolites in future analyses would, the authors predict, "result in [the] identification of many more mortality associated biomarkers and, hence, improved risk prediction."

"There's a hope that in the near future we can understand the biomarkers that can be modified, perhaps by helping people improve their lifestyle or through medication, to lower the risk of death before a significant deterioration of health."

Study co-author Dr. Fotios Drenos

Although this exact test would not be suitable for use by the general public, it could eventually evolve and move into the public sphere in the same way that genetic testing has.

Perhaps, in the future, the question might not be, "How long will I live?" but rather, "Do I want to know?"

Heart Disease

Being easily fatigued may signal future heart problems (Medical News Today: 20190827)

https://www.medicalnewstoday.com/articles/326136.php

People who are easily winded by very light exercise could be at more of a risk for heart disease than others who do not experience the same level of tiredness, recent research finds.

Finding light physical exercise exhausting may be a sign of future heart disease, says a new study.

The study, appearing in the Journal of the American Heart Association, looked at a participant pool of 625 individuals with an average age of 68 years.

The study team found that those who tired easily had an overall higher chance of developing cardiovascular disease.

First, the researchers calculated each person's 10-year risk of heart disease or stroke, using two different formulas.

Then, 4.5 years later, they assessed each participant with a test that consisted of "an extremely slow walk." Each person had to walk for 5 minutes on a treadmill set at a pace of 1.5 miles per hour. This exercise test was to examine their "fatigability."

After studied all the data, the researchers found that those who had higher cardiovascular risk scores from years ago were more likely to report that this simple physical task was exhausting.

"Even if you're exhausted because you have a newborn at home, this would be considered a very easy task," says study author Jennifer Schrack, an associate professor in the epidemiology department at Johns Hopkins Bloomberg School of Public Health in Baltimore, MD.

"It should be very light exertion. When people think the effort is more than very light, that's informative."

Risks of cardiovascular disease on the rise

Cardiovascular disease (CVD) is the leading cause of death worldwide, according to the World Health Organisation (WHO). While the current numbers of deaths due to CVD are high, experts believe they will increase over the next 15 years from 17.9 million in 2016 to over 23.6 million in 2030 around the world.

The American Heart Association (AHA) estimate there are 85.6 millions of people in the United States with more than one type of CVD, and approaching half of these adults are 60 years old or above.

CVD is a broad term that can refer to several different conditions. There are several ways to reduce the chances of developing CVD.

Both blood pressure numbers may predict heart disease

New research suggests that both high systolic and high diastolic blood pressure may indicate heart problems.

Eating well is a significant part of having a healthy cardiovascular system. This means consuming foods that are low in saturated fat, trans fats, and sodium. It is also vital to include fruits and vegetables, whole grains, fatty fish if not vegetarian or vegan, nuts, legumes, and seeds.

Also, it is crucial to be physically active. The WHO goal for maintaining a healthy heart is to do at least 150 minutes each week of moderate anerobic exercise, such as brisk walking.

Many people break this up into five 30-minute sessions each week. Alternatively, they can swap this regime for 75 minutes of high-intensity aerobic exercise, such as jogging or running.

Implications of the study

Dr. Salim Virani, a cardiologist at Michael E. DeBakey VA Medical Center and a professor of cardiology at Baylor College of Medicine in Houston, who did not participate in the study, voiced one criticism of this latest investigation.

He notes that the researchers did not measure "fatigability" at the beginning of the study, which would have allowed them to compare the two tests 4.5 years later.

However, Schrack says that people can use this symptom as a sign that they should pay more attention to their cardiovascular health and possibly make changes that could reduce their risk of CVD.

"People don't like to hear, 'Eat right and exercise.' These are two of the biggest pieces of public health advice, and we say it relat[ing] to almost every condition. But it's so true."

Jennifer Schrack

"People who are able to maintain their weight, maintain their activity level, tend to have [fewer] effects of fatigue and certainly less cardiovascular risk over time," concludes Schrack.

Air Pollution

Controversial study links pollution with bipolar, depression (Medical News Today: 20190827)

https://www.medicalnewstoday.com/articles/326127.php

A recent study has concluded that exposure to air pollution, particularly during the first 10 years of life, could play a significant role in the development of psychiatric disorders. However, not everyone is convinced by the data.

High levels of pollution may considerably raise the risk of mental health conditions.

The study, which appears in PLOS Biology, used data from the United States and Denmark to uncover the possible link between environmental pollution and psychiatric disorders.

The new research found that rates of both bipolar disorder and depression were higher among those living in areas of poor air quality.

The researchers also concluded that Danish people who lived in polluted areas during their first decade of life were more than twice as likely to have personality disorders and schizophrenia.

With mental health in the spotlight, researchers are keen to understand the factors that influence whether or not someone develops psychiatric illness.

There are a multitude of potential causes, including genetics as well as life experiences, so it is not possible to exclude environmental factors.

In this new study, the team looked more closely at how a specific environmental factor — air pollution — affects the brain and the likelihood of psychiatric disorders.

Air pollution research

To reach their conclusion, the researchers drew from two large datasets. The pollution information for the U.S. came from the Environmental Protection Agency's (EPA) air quality measurements, while for Denmark, the researchers looked at the national pollution register.

The EPA track 87 different air quality measurements. Although the Danish pollution register monitors fewer measurements, they have a higher spatial resolution.

The team then looked at healthcare data. For the U.S., they accessed a health insurance database that included claims that more than 151 million individuals made between 2003 and 2013.

For Denmark, they used data for all of the residents who were born in the country between 1979 and 2002 and were living in Denmark on their 10th birthday.

Why more depression treatments should include exercise

A meta-review provides strong evidence that physical exercise can help relieve depression.

Denmark assigns each person a unique identifying number that links information from national registries. This information enabled the researchers to estimate air pollution exposure during the first decade of life. However, the researchers were not able to be quite so specific with the U.S. dataset, as they were limited to the county level.

According to the authors, the findings showed that air pollution did have links to various psychiatric disorders. Using Denmark's more specific records, the researchers were able to pinpoint that the developing brain during a person's first 10 years of life might be a bit more prone to the effects of air pollution.

"We hypothesized that pollutants might affect our brains through neuroinflammatory pathways that have also been shown to cause depression-like signs in animal studies," says Andrey Rzhetsky, of the University of Chicago, IL, who led the study.

Computational biologist Atif Khan, who is the first author of this study, comments on the findings. He says, "The physical environment — in particular air quality — warrants more research to better understand how our environment is contributing to neurological and psychiatric disorders."

"Our study shows that living in polluted areas, especially early on in life, is predictive of mental disorders in both the U.S. and Denmark."

A dose of skepticism

Althought the results are interesting, the study does have significant limitations and has caused much debate, as Rzhetsky himself explains.

He says, "This study on psychiatric disorders is counterintuitive and generated considerable resistance from reviewers."

In fact, there was so much division that the journal decided to publish a companion article alongside the research paper. Prof. John Ioannidis, a scientist who assisted in the journal's editorial process but who is not connected with the original study, is the author.

In the article, he picks apart the data. Among other criticisms, he explains how "results from the U.S. data offer mostly coarse, exploratory hints. Associations may be entirely spurious or, conversely, important associations may be missed because of these deficiencies."

Prof. Ioannidis eventually concludes that a "causal association of air pollution with mental [conditions] is an intriguing possibility."

"Despite analyses involving large datasets," he adds, "the available evidence has substantial shortcomings and a long series of potential biases may invalidate the observed associations. More analyses by multiple investigators, including contrarians, are necessary."

In conclusion, the theory that pollution impact mental health will require a great deal more evidence before mainstream scientists begin to take it seriously.